

गुरुमति संगीत में जोड़ी वादन की परम्परा

अन्नपूर्णा श्रीवास्तव

पी.एच.डी. (शोधार्थी)

संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

[Email: anpurna96@gmail.com](mailto:anpurna96@gmail.com)

सारांश

पंजाब के संगीत में आरंभ से ही एक प्रवाहमयता, ताज़गी तथा नवीनता है जो इसको अन्य क्षेत्र के संगीत से पृथक् करती है। पंजाब में शास्त्रीय संगीत की परंपरा एवं विकासधारा अधिक परिपक्व एवं परिष्कृत है। वही अगर यहां के वाद्य वादन की बात करें तो अवनद्ध वाद्यों की परंपरा की जड़े अति गहन प्राप्त होती हैं जिसमें जोड़ी वाद्य (धामा) का गुरुमति संगीत में बहुत योगदान रहा है। जोड़ी वाद्य रबाबी घराने द्वारा पंजाब को एक विशिष्ट देन है जो अतीत से वर्तमान तक अपनी अलग पहचान एवं महत्व को उजागर कर रहा है। वास्तव में, पंजाब घराना, पंजाब के क्षेत्र से संबंधित, कई घरानों का प्रतिनिधित्व करता है जैसे कि लाहौरी घराना (जिसे उस्ताद मियां कादिर बख्श व उनके शिष्यों के रूप में देखा गया), कसूर घराना, नाईयां दा घराना, रबाबी घराना। प्रस्तुत शोध पत्र में गुरुमति संगीत के साथ प्रयुक्त जोड़ी वाद्य की परंपरा को और कतिपय नामी कलाकारों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।



मुख्य बिंदु - गुरुमति संगीत, गुरु साहिबान, रबाबी, जोड़ी वाद्य।

Shrivastav, Anupurna. 2023. "Gurumati Sangeet me Jodi Vadan ki Parampra." *Sangeet Galaxy* 12(2): 159-164. www.sangeetgalaxy.co.in.

निरंतर क्रमबद्ध श्रृंखला में अपनी प्रासांगिकता बनाए रखने वाले तत्व किसी भी परंपरा के जीव तत्व होते हैं तथा गतिशील परंपरा के विकास में निरंतरता का होना अति आवश्यक माना गया है। यह परंपरा एक का दूसरे को और दूसरे का तीसरे को दिया जाने वाला पीढ़ी दर पीढ़ी क्रम है जो हस्तांतरण के इस क्रम में अतीत की सम्पूर्ण निधि को समेटते हुए प्रवाहमान रहती है। गुरुमति संगीत लगभग पांच शताब्दियों पुरातन सिक्ख धर्म की अद्वितीय सांगीतिक परंपरा है, जिसे श्री गुरु नानक देव जी से समस्त गुरु साहिबानों ने जनकल्याण के उद्देश्य हेतु मर्यादित रूप में प्रचारित किया। गुरुमति संगीत में शब्दों (भक्ति-काव्य) के माध्यम द्वारा, भारतीय शास्त्रीय संगीत आधारित रागों का गायन-वादन, कीर्तन शैली के रूप में किया जाता है। साथ ही भारतीय संगीत के वाद्य भी गुरुमति संगीत की सम्पूर्णता को दर्शाते हैं जिसमें रबाब, सारिंदा, इसराज, तारुस, दिलरूबा, सारंगी आदि तंत्री वाद्य एवं मृदंग, पखावज, जोड़ी, तबला अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग अहम् अंग बना।

घरि घरि बाबा गावीयै बजनि ताल मृदंग रबाब ..

-(भाई गुरुदास, वार 24, पाऊड़ी 4)-

रबाब पखावज ताल घुंघरू अनहद शब्द बजावै ..

-(आसा महला 5, पृष्ठ 38)-

उपरोक्त गुरुबाणी के शब्दों द्वारा स्पष्ट होता है कि गुरुओं के समय कीर्तन में पखावज (मृदंग) बजाया जाता था. उत्तर भारत में पखावज को ही मृदंग के नाम से कहा जाता है. बाद में पखावज का ही परिवर्तित रूप 'जोड़ी' वाद्य बनपा एवं प्रचलित हुआ जो कि प्राचीन ऊर्ध्वमुखी वाद्यों से प्रेरित था. "प्रारंभ में इस कीर्तन के साथ ताल की संगति के लिए पखावज (मृदंग) वादन की परंपरा थी. किंतु बाद में उसका स्थान 'जोड़ी' वाद्य ने ले लिया और इस प्रकार पंजाब में सिक्खों के गुरुद्वारों में 'जोड़ी' वाद्य के वादन की प्रथा चल पड़ी." ¹ यह वाद्य ऊर्ध्वमुखी पखावज ही है जो गुरु साहिबानों के काल में रबाबियों द्वारा बनाया गया.

गुरुमति संगीत के कीर्तनकारों में प्रथमतः रबाबियों का स्थान आता है जो मिरासी जाति से संबंधित थे. मिरासी जाति के लोग मूलतः हिन्दू थे जिन्होंने मुसलमान धर्म स्वीकृत किया था. इनको सामाजिक प्रतिष्ठा सर्वप्रथम श्री गुरु नानक देव जी के द्वारा प्राप्त हुई जब उन्होंने अपने संगीत प्रेम से प्रेरित होकर मरदाना को, जो मिरासी जाति के थे, अपना कीर्तन साथी चुना. गुरु जी ने भगवद् भजन करते हुए लगभग 30 सालों तक देश-विदेश की उदासीयां की तथा भाई मरदाना ने उनका साथ गायन एवं रबाब वादन करके किया. रबाब वादन करने में निपुण भाई मरदाना को गुरु जी द्वारा 'रबाबी' उपाधि से प्रतिष्ठित किया और कालांतर में उनके वंशज भी, जो कीर्तन करते, मिरासी के स्थान पर रबाबी कहलाए. "ये मिरासी कीर्तनीये संगीत व्यवसायी परिवार के होने के कारण गायन और वादन कला में अत्यंत दक्ष थे और अपनी कला द्वारा श्रोताओं को रसमग्न और भाव-विभोर कर देने में पूर्णतः समर्थ थे, अस्तु मुसलमान मिरासी ही प्रथम चार गुरुओं के जीवनकाल में कीर्तनकार के रूप में नियुक्त होते रहे." ² इस प्रकार अपने आप को रबाबी कहने का तात्पर्य उन रबाबियों से उपजी वंशावली के संबंध में एक प्रमाणिकता का दावा करना है जो सिक्ख गुरुजन के साथ कीर्तनकार थे. यह रबाबी परंपरा गायन एवं वादन में विशिष्ट रूप से विलक्षण थी तथा समकालीन मुगल दरबारों के संगीतकारों से किसी भी रूप में कम न थी. रबाबी नित्यप्रति के कीर्तन तथा परंपरानुरूप अपनी विद्या का ज्ञान संचरित करते रहे एवं गुरुमति संगीत के सेद्धान्तिक तथा व्यवहारिक रूप से समान रूप में जुड़े हुए थे. "यह रबाबी यद्यपि मुसलमान थे लेकिन अपने आश्रयदाताओं की संतुष्टि के लिए सिक्खों की भांति सिर पर पगड़ी धारण करते थे और प्रायः दाढ़ी भी रखते थे." ³ इनका जीवन केवल गुरुबानी शब्द गाना और पढ़ना ही जीवनशैली थी.

¹तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलियाँ, योगमाया शुक्ला, पृष्ठ-121

²पंजाब की संगीत परंपरा, गीता पैतल, पृष्ठ-135

³भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, डॉ. जोगिन्दर सिंह 'बावरा', पृष्ठ-52

भाई मरदाना और उनके पुत्र शहजादा के पश्चात् भाई सत्ता और भाई बलवंद रबाबी वंशावलज्जों में अत्यंत प्रसिद्ध हुए जिन्होंने गुरु अंगद देव जी (1504 ई. से 1552 ई. तक) से कीर्तन करना प्रारंभ कर गुरु अर्जन देव जी (1563 ई. से 1606 ई. तक) के समय तक सेवा की. इन्हीं को जोड़ी वाद्य के निर्माणकर्ता माना जाता है. इन्होंने मृदंग बाज को जोड़ी पर बजा कर एक नवीन शैली को जन्म दिया जो पूर्णतः पखावज पर आधारित थी. चूंकि पहले पखावज का वादन ही संपूर्ण पंजाब में किया जाता था लेकिन जोड़ी वाद्य बनने के बाद उसकी पूर्ण शैली को जोड़ी वाद्य पर खुले हाथों से वादन किया जाने लगा जिसे 'खुले बोल' कहा गया और बाएं (डुग्गी) पर आटा लगाया जाता पखावज के जैसे इसीलिए इसे 'आटे वाला धामा' कहने लगे. यद्यपि इसको एक पखावज से दो हिस्सों में बांटकर जोड़ी बनाया तो आम बोली में इसे 'दुक्कड़' कहने का प्रचार भी हुआ. "तबले का उद्गम पंजाब प्रांत के 'दुक्कड़' नामक वाद्य से हुआ मानते हैं. दुक्कड़ का अर्थ है दो और वह वाद्य भी तबले के समान दो भागों में होता है. अतः इस मत के पोषक तबले का उद्गम इसी दो भाग वाले 'दुक्कड़' का परिष्कृत रूप बतलाते हैं."⁴

जोड़ी का निर्माण टुन लकड़ी के प्रयोग से किया जाता है जो वाद्यों के लिए सबसे अच्छी गुणवत्ता वाली लकड़ी मानी जाती है. इसके दाएं भाग का आकार तबले के दाहिने की भांति परंतु 7 से 8 इंच की व्यापक परिधि पूर्ण चट्ट की चौड़ाई का उपयोग होता है और बायां भाग बैरल के आकार का लंबा एवं 8 से 9 इंच व्यापक परिधि चौड़ाई और 8 से 10 इंच की ऊंचाई पाई जाती है. दाएं भाग पर लौहपूर्ण से निर्मित स्याही लगी होती है तथा बाएं भाग (धामे) पर गीले गेहूं के आटे को गूंथ कर लेप, बजाने से कुछ समय पूर्व ही लगाया जाता है. जोड़ी में खुले हाथ से बजने वाले बोलों का वादन किया जाता है तथा दाहिने हाथ की हथेली से थापी का प्रयोग पखावज के तरीके से होता है एवं धामे के लिए हाथ की उंगलियों, हथेली एवं ऐड़ी का प्रयोग डुग्गे को दबाने व बजाने के लिए होता है. जोड़ी अधिक विशद, मृदुपूर्ण एवं निर्बाध गहन ध्वनि को उत्पन्न करने वाला वाद्य है. यह गम्भीर प्राकृति का वाद्य अपने गहरे अनुनाद के लिए प्रख्यात है. अमृतसर में सचखण्ड श्री हरिमंदिर साहिब में रबाबी "कीर्तन की शुरूआत ही ध्रुवपद-धमार से करते थे जिस कारण उन्होंने मृदंग (पखावज) के खुले बोल जोड़ी पर बजाने आरंभ कर दिए. भावार्थ, पंजाब के पखावजियों ने जोड़ी के दाहिने हाथ वाले पुड़े को तो ज्यों का त्यों कायम रखा, पर दाहिने हाथ वाली डुग्गी की जगह उन्होंने आटे वाला धामा प्रयोग किया. जो मृदंग का ही एक नया रूप था, ऐसे ध्रुवपद-धमार गाते समय वह मृदंग जैसे तबले पर खुले बोल, तोड़े, गत, परने आदि बजाते थे और कहरवा, दादरा, चंचल तीनताल आदि ताल बजाते समय गत-तोड़े, पेशकार, कायदे, परने बंद हाथ के साथ बजाते थे."⁵ जोड़ी वाद्य का प्रयोग गुरुबानी संगीत, कीर्तन शैली, ध्रुपद शैली, कव्वाली एवं अफगान पारंपरिक संगीत में किया जाता है. तबला और जोड़ी वाद्य की बनावट, वादन शैली एवं ध्वनि में बहुत अंतर मिलता है, इन्हें एक जैसा वाद्य समझना उचित नहीं. आज भी कई पीतल के बने हथौड़ों के पाश्चय भाग में अभी भी आटा हटाने वाला चपटा-सा

⁴ पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, आबान ए. मिस्त्री, पृष्ठ-105

⁵ तबला मृदंग सागर, प्रि. दयाल सिंह, पृष्ठ-11

चम्मच बना होता है क्योंकि यह हथौड़े पुराने हथौड़ों के सांचे से बनाए जाते हैं, हालांकि कई आधुनिक हथौड़े में यह रंग नहीं भी होता.

जोड़ी वाद्य का उद्गम क्षेत्र पंजाब होने के कारण इसकी वादन सामग्री एवं बोलों पर स्पष्ट रूप से पंजाबी भाषा का असर प्रत्यक्ष होता है. कीर्तन से पहले जोड़ी वाद्य पर शान में साथ का वादन किया जाता है उसमें गत, तोड़े, लगां और बड़ी-बड़ी गतें, परनें एवं चौंकड़ियां बजाई जाती हैं. गुरुमति संगीत के मर्यादित शब्दों में साथ के बोलों में संगति प्रमुख रूप से की जाती है जिसमें ताल पाऊड़ी का विशेष स्थान है. इसमें बोलों को सम पर मुकाअ (तिहाई की तरह अलग सम दिखाकर समापन होता है) करके आते हैं. कई कीर्तन शब्दों में, बोलों के साथ छंद परनों का वादन भी किया जाता है जैसे कि शब्द में बोलों का चलन जिस छंद अनुरूप हो रहा हो ठीक वैसे ही जोड़ी में खुले हाथों से उन बोलों के छंद अनुसार वादन किया जाता है. जोड़ी वादक भाई बलदीप सिंह जी ने इसके बारे में कई बार विस्तृत रूप में अपनी वादन शैली में साथ के बोलों का प्रयोग बतलाया है. श्री हरिओम जी के अनुसार- “लगां और चौंकड़ियों का महत्व, एक बोल के साथ दूसरे बोल का समन्वित होना, साथ का कीर्तन शैली में ओर भी उत्कृष्ट करता है. इनमें नगड़ धेधे, किततक तादूं, नातिटता, गिदगी, केधीनट आदि बोल समूह ऐसे हैं जिनका खुले हाथ से वादन कर जोड़ी की शैली का पता चलता है.” जोड़ी की वादन शैली में ठेके की बांट का कार्य एवं लयकारियों का गणित जटिलतापूर्वक होता है. इस अनूठे रबाबी घराने में विकसित बोल किसी अन्य घराने से भिन्न हैं जैसे कि वह जिस तरीके से बजाए जाते हैं.

रबाबी वंशावली में भाई सत्ता और भाई बलवंद के पश्चात् भाई बाबक, भाई बथन, भाई अब्दुल, भाई सदा, भाई मद्दा और भाई गुलाम मुहम्मद चंद ने गुरु साहिबानों के साथ संगतकारी एवं कीर्तन किया. यह वंशज ध्रुवपद, धमार, ख्याल, कव्वाली, गज़ल आदि गाने में तथा जोड़ी पखावज के वादन के प्रसिद्ध कलाकार हुए. गुरु साहिबानों की संगति के पश्चात् कई प्रतिभाशाली रबाबी कलाकारों ने वैसे ही परंपरागत रूप से जोड़ी वादन को आगे बढ़ाया जिनमें भाई चांद, भाई अन्ना, भाई धन्ना, भाई मोती, भाई साईं दित्ता, भाई लाल, भाई ताबा, भाई सुन्दर, भाई देसा, भाई अली बख्श, भाई चिराग, भाग बाग, भाई नसीर, भाई हमीर, भाई अमीर बख्श, भाई रक्खा, भाई सन्तु, भाई महिन्दा, भाई रत्नसिंह, उ. भजन लाल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं. इन्होंने अपना सारा जीवनयापन कीर्तन करके ही बीताया परंतु 1920 ई. में जब गुरुद्वारा कमेटी द्वारा यह निश्चित किया गया कि केवल अमृतपान किए हुए सिक्ख ही मर्यादित रूप से गुरुद्वारों में कीर्तन किया करेंगे तो रबाबियों को इससे काफी क्षति पहुँची क्योंकि गुरुओं द्वारा चलाई कीर्तन परंपरा में रबाबियों को निष्कासित कर दिया गया. इनका तो गुजर-बसर चार प्रहर की कीर्तन चौकियों द्वारा ही चलता था परंतु जब सिक्ख कीर्तनकारों की ही मांग हुई तो हिन्दू मुस्लिम रबाबी वहाँ कीर्तन न कर सके तथा सिक्खों ने असल में रबाबियों के शिष्यत्व में शिक्षा ग्रहण कर और रबाबी वंशावलज्ञ न होते हुए भी अपने आप को रबाबी कहने लगे जिससे रबाबी दरबार साहिब में गुरु साहिब की हुजूरी में मर्यादित रूपेण कीर्तन का संचार न कर पाने से काफी समय तक उनका मान सम्मान भी क्षीण होता गया. यही

रबाबी मुसलमानों के पतन का कारण बना और 1947 ई. में जब भारत-पाकिस्तान का बंटवारा हुआ तो अधिकतर रबाबी पाकिस्तान चले गए.

रबाबियों के निवास का मुख्य गढ़ अमृतसर ही था तथा जिसे 'कूँचा रबाबियां दा' नामक रबाबियों वाली गली अथवा महल्ला कहते हैं, वहां सभी रबाबी निवास करते थे. "अमृतसर के गुरुद्वारों में कीर्तन के साथ संगति करने के कारण यह घराना रबाबी घराना के नाम से अभिहित हो गया. रबाबी लोग जिस गली में निवास करते थे, उसे रबाबियों की गली कहा जाने लगा."⁶ गुरुद्वारे में सुबह-शाम कीर्तन तो वह नित्यप्रति करते ही थे साथ ही एक स्थान पर नियमित रूप से एकत्रित हो गायन-वादन करते जिनमें समय-समय पर बड़े उस्ताद मच्छर खाँ, बड़े गुलाम अली खाँ आदि विभिन्न शास्त्रीय गायक भी सम्मिलित होते थे. यहां आज भी रबाबी वंशज भाई गुरामल जी का परिवार निवास करता है.

रबाबियों के पाकिस्तान चले जाने के बाद तंत्री एवं दुक्कड़ (जोड़ी) वाद्य का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता गया और उसकी जगह हारमोनियम तथा तबला ने ले ली. रबाबी गुणवान एवं प्रतिभाशाली होने के कारण इनके ऊपर गुरुओं की वाणी गायन एवं वादन करने की कृपा-पात्रता मिली हुई थी. जो कुछ-थोड़े रबाबी अमृतसर में ही रहे उनमें उ. भाई रत्नसिंह व उनके शिष्य उस्ताद भजन लाल, श्री हरिओम, डॉ. मुरली मनोहर, पटियाला में फक्कड़ परिवार एवं तान परिवार, भाई बलदीप सिंह, सुखविंदर सिंह 'पिंकी' (नामधारी) हैं जो आज वर्तमान कालीन जोड़ी वाद्य के प्रचार-प्रसार में निरंतर प्रयत्नशील हैं. भाई बलदीप सिंह के अनुसार, गुरुबानी कीर्तन की मर्यादित अवस्था को परम्परागत रूप से चली आ रही विधि व उसी का फैलाव ही हमारा जीवनोपरंत प्रयास है.

जोड़ी वाद्य का स्थान तबला द्वारा प्रतिस्थापित हो जाने के कारण इसके बारे में अन्य प्रान्तिय लोग कम ही जानते हैं अतः 1947 ई. के बंटवारे के पश्चात् इसका प्रचार-प्रसार और वादक कम हो जाने से इसकी ख्याति पर असर पड़ने लगा परंतु फिर भी जो वादक इसका वादन करते थे वह तो करते ही रहे और इस परंपरा का निर्वाह निष्ठापूर्ण किया. दो दशक पूर्व इसके वादक पंजाब में गिने-चुने ही रह गए थे अतः प्रो. गुरनाम सिंह के अथक प्रयासों ने गुरुमति संगीत को आकादमिक स्थान दिलवाया एवं पंजाब व अमेरिका के विश्वविद्यालयों में विभिन्न कोर्स, डिग्रीयों का आरंभ कर गुरुमति संगीत में प्रयुक्त राग, ताल, वाद्य, गायन शैली का शिक्षण दिया जाने लगा. पंजाब में जवदी कलां, भैणी साहिब, अमृतसर, पटियाला, लुधियाना, नामधारी आदि संस्थाओं में भी जोड़ी वाद्य के प्रशिक्षण का कार्य करवाया जा रहा है. भाई बलदीप सिंह द्वारा विशेषकर जोड़ी का पूरे भारतवर्ष में प्रचार किया जा रहा है साथ ही युवा जोड़ी वादकों को सरकारी छात्रवृत्ति का प्रबंध भी करवाया गया. अतः जहां जोड़ी वाद्य का लुप्त प्रायः होना आरंभ हो गया था वही शिक्षा केन्द्रों द्वारा एवं विभिन्न छात्रवृत्तियों द्वारा नवीन युवा पीढ़ी को इसके महत्व और शैली का ज्ञान देना संभव हो पा रहा है जिनमें अभी भी रबाबी शिष्यों का बड़ा योगदान है.

निष्कर्ष:-

⁶ भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास, जोगिन्दर सिंह 'बावरा', पृष्ठ-187

1. गुरुमति संगीत से परिचय होगा.
2. गुरुमति संगीत में प्रयुक्त अवनद्ध वाद्यों की विशेषता का पता चलेगा.
3. जोड़ी वाद्य के उद्गम एवं विकास से उज्ज्वल होगा.
4. जोड़ी से संबधित विभिन्न अवधारणाओं से सत्यता उजागर होगी.
5. सिक्ख संप्रदाय में प्रचलित कीर्तन शैली की पुरातन परंपरा को समझा जा सकेगा.

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ल, योगमाया. *तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलियाँ*. प्रथम संस्करण, दिल्ली: हिन्दी कार्यालय निदेशालय, 1987.
2. मिस्त्री, आबान-ए. *पखावज एवं तबले के घराने, उद्भव विकास एवं विविध परम्पराएँ*. प्रथम संस्करण मुम्बई: स्वर साधना समिति, 1984.
3. पैन्तल, गीता. *पंजाब की संगीत परंपरा*. प्रथम संस्करण, नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशंस, 1988.
4. 'बावरा', जोगिन्द्र सिंह. *भारतीय संगीत की उत्पत्ति एवं विकास*. जालंधर: ए.बी. एस, पब्लिकेशन्स, 1994.
5. सिंह, प्रि. दयाल. *तबला मृदंग सागर*. दूसरा संस्करण, नई दिल्ली: गुरुद्वारा रकाब गंज, 2000.
6. भैरवी. *पंजाब की वादन संगीत परंपरा*. प्रथम संस्करण, नई दिल्ली: कनिष्क पब्लिशर्स, 2015.
7. भेंटवार्ता: भाई बलदीप सिंह जी
8. भेंटवार्ता: श्री हरिओम जी

पंजाबी पत्रिका

1. सिंह, जागीर. *अमृत कीर्तन*. नवम्बर 2022, अमृत कीर्तन ट्रस्ट (रजि.), चण्डीगढ़.